(२). विकासवाद (Evalutionism) :→

विश्व की उत्पत्ति-संबंधी प्रश्नों का आधुनिक एवं वैज्ञानिक उत्तर विकासवाद में मिलता है। इसके अनुसार विश्व की रचना ईश्वर द्वारा किसी विशेष समय में नहीं हुयी। वर्तमान विश्व एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि यह युग-युगांतर से चली आ रही विकास-प्रक्रिया का परिणाम है। विश्व का स्वरूप सदैव बदलता रहता है। वर्तमान भूत का परिणाम है और भविष्य वर्तमान का फल है। अतः यह विकास प्रक्रिया सतत् प्रवाहशील सरिता की भाँति सदैव क्रियाशील है।

विकासवाद की धारणा है कि समय के साथ जीवों में भी क्रमिक परिवर्तन होते हैं। इसका एक लम्बा इतिहास रहा है। 18वीं शती तक पश्चिमी जीव वैज्ञानिक चिंतन में यह विश्वास जड़ जमाये था कि प्रत्येक जीव में कुछ विलक्षण गुण हैं जो बदले नहीं जा सकते। इसे इसेंशियलिज्म (essentialism) कहा जाता है। पुनर्जागरण काल में यह धारणा बदलने लगी। 19वीं शती के आरम्भ में लैमार्क ने अपना विकासवाद का सिद्धांत दिया जो क्रम-विकास (evalution) से संबंधित प्रथम पूर्णतः निर्मित वैज्ञानिक सिद्धांत था।

विकास प्रक्रिया परिवर्तन की प्रक्रिया कही जाती है। यहाँ विकास से तात्पर्य ही है – परिवर्तन। विकासवाद का कहना है कि परिवर्तन विश्व का आवश्यक धर्म है। विश्व का कोई भी पदार्थ अपरिवर्तनशील नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परिवर्तन क्षण-क्षण अनवरत रूप से हो रहा है। यह परिवर्तन मिथ्या नहीं, बल्कि वास्तविक है। इस प्रक्रिया के दौरान जो परिवर्तन होते हैं वे अटूट एवं अविछिन्न होता है। यहाँ विकास-क्रम में किन्हीं दो अवस्थाओं के बीच रिक्त स्थान नहीं रहता।

विकासवाद के प्राचीन समर्थक इस प्रक्रिया को एकमुखी मानते थे। उनका कहना था कि विकास सदैव सरल से जटिल की ओर होता है। इस प्रकार, सरलता से जटिलता की ओर

विकास-प्रक्रिया अग्रसर होती रहती है। जो जीव पहले सरल थे, वे अधिक जटिल होते जाते हैं। किंतु आधुनिक विकासवादी ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार, विकास-प्रक्रिया द्विमुखी होती है, अर्थात यह प्रक्रिया सरल से जटिल की ओर और जटिल से सरल की ओर होता है।

प्रो० ड्रेक (Prof. Drake) का कहना है कि बहुत से जीव ऐसे हैं, जो अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक सरल हैं। कई जटिल जीवों का नाश हो गया है और विकासक्रम में सरल जीव बच गए हैं। अतः स्पष्ट है कि यह विकास-प्रक्रिया द्विमुखी रही है।

वहीं दूसरी ओर हर्बर्ट स्पेन्सर ने विकास प्रक्रिया की तीन विशेषताएँ बतायी हैं - संकलन या एकीकरण, विभेदीकरण और निर्धारण या व्यवस्थापन। उनका कहना है कि जीवित शरीर में ये तीनों विशेषताएँ विद्यमान रहते हैं। शरीर में विभिन्न जीव-कोषों का एकीकरण होता है और इसमें विभेदीकरण भी है, क्योंकि शरीर के विभिन्न अंग विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। आँखें केवल देखती हैं, सुनती नहीं। कान केवल सुनते हैं, देखते नहीं। इस प्रकार इन अंगों में अंतर होते हुए भी ये एक साथ मिलकर परस्पर सहयोग करते हुए शरीर की रक्षा करते हैं। यही व्यवस्थापन है। स्पेंसर द्वारा बतायी गयी विकास-प्रक्रिया के तीनों लक्षणों को अधिकांश विकासवादी स्वीकार करते थे, पर वे इनका नामकरण विभिन्न प्रकार से करते हैं।

⇒ विकासवाद के विभिन्न रूप :→

विकासवाद का समर्थन दर्शन और विज्ञान दोनों ने किया है। इसलिए इसका दो रूप स्पष्टतः दिखाई देता है - (1) दार्शनिक विकासवाद और (2) वैज्ञानिक विकासवाद। दार्शनिक विकासवाद संपूर्ण विश्व को विकास का परिणाम मानता है, तो वैज्ञानिक विकासवाद किसी क्षेत्र-विशेष की व्याख्या करता है।

(1) दार्शनिक विकासवाद → इसके पांच प्रकार के रूप मिलते हैं :-

(i)- यंत्रवादी विकासवाद :→ इसके अनुसार, विश्व यंत्रवत् एवं विकास-शील है। यंत्रवत् होने का अर्थ है - विश्व प्रक्रिया का कोई प्रयोजन या लक्ष्य नहीं है। इसमें स्वेच्छा से कोई कार्य नहीं होता। विश्व प्राकृतिक नियमों का आवश्यक परिणाम है और इन्हीं नियमों द्वारा संचालित होता है। इसके प्रमुख समर्थक हैं - स्पेन्सर, हेकेल आदि। इस विकासवाद के अनुसार संपूर्ण भौतिक जगत (जीव और चेतन) का विकास जड़ परमाणुओं के आकस्मिक मिलन के कारण हुआ है। इस क्रम के मूल में कोई बुद्धि काम नहीं करती। गति के कारण स्वयं परमाणु परस्पर मिलते और अलग होते हैं। अनंत काल से अनंत दिशा में परमाणुओं के अनेक संयोग-वियोग होते आ रहे हैं। फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते और नष्ट होते रहते हैं।

(ii)- प्रयोजनात्मक विकासवाद :→ यह विश्व को प्रयोजनपूर्ण और विकासशील बताता है। यह यंत्रवाद का पूर्णत: विरोधी है। इसके अनुसार विश्व-प्रक्रिया का कुछ निश्चित उद्देश्य रहता है जिसकी पूर्ति के लिए यह प्रक्रिया सतत् क्रियाशील है। इसके समर्थक अरस्तु, हीगेल आदि हैं तथा भारतीय दर्शन में सांख्य विचारक और राधाकृष्णन आदि हैं।

यह विकासवाद विश्व के सभी क्षेत्रों में साध्य और साधन के बीच अभिन्न संबंध मानता है। उदाहरणार्थ, शरीर की सभी क्रियाएँ प्रयोजन पूर्ण होती हैं। उनका परिचालन किसी निश्चित लक्ष्य की सिद्धि के लिए होता है। भविष्य वर्तमान में ही निहित रहता है। वर्तमान भविष्य की सिद्धि का एक साधन है। अत: विकास-प्रक्रिया उद्देश्ययुक्त है। इस मत को द्वैतवादी और एकतत्ववादी भी कहा जाता है।

(iii)- सर्जनात्मक विकासवाद :→ यह फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसाँ के विकास-सिद्धांत का नाम है। उनके अनुसार मूलतत्व प्राणशक्ति है। यह सतत परिवर्तनशील, विकासयुक्त एवं पूर्णतः स्वतंत्र है। इसका मुख्य लक्षण है सर्जनात्मकता। प्राण-शक्ति विकास की प्रत्येक अवस्था में नूतन घटनाओं का सर्जन करती है। इसके अनुसार विकास-प्रक्रिया प्रायः प्राचीन एवं पूर्व की पुनरावृत्ति नहीं कही जा सकती और न ही आने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी ही।

(iv). नव्योत्क्रांतिवादी विकासवाद :→ इसके प्रमुख समर्थक अलेक्जेंडर और मॉर्गन हैं। इनके अनुसार विकास की हर अवस्था में नूतन गुणों का आविर्भाव होता है अर्थात् विकास की हर सीढ़ी नवीन गुणों का आविर्भाव करती है।

मार्गन के अनुसार जड़ पदार्थ से प्राण और प्राण से मन का आविर्भाव होता है। तत्वों का ऐसा समन्वय होता है कि नए-नए पदार्थों एवं गुणों का उदय होता है। ये एक विशेष शक्ति को विकास-प्रक्रिया को प्रेरक शक्ति कहते हैं। इस विशेष शक्ति को वह ईश्वर कहते हैं। इस प्रकार नव्योत्क्रांतिवादी विकासवाद प्रयोजनात्मक विकासवाद का ही एक परिमार्जित रूप है।

(v). समष्टिवादी विकासवाद :→ इसके प्रतिपादक अफ्रिका के जेनरल स्मट्स (General Smuts) हैं। इनके अनुसार विश्व विकासशील है। वह विकास-प्रक्रिया में एक ऐसी शक्ति को मानते हैं, जो उच्च से उच्च समष्टियों की उत्पत्ति करती है। इस क्रम में विभिन्न अवस्थाएँ, विभिन्न समष्टियाँ हैं। इस प्रक्रिया की प्रवृत्ति समष्टि-निर्माण की रहती है।

(2). वैज्ञानिक विकासवाद :→ विज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने क्षेत्र में विकासवाद का समर्थन करती है। यहाँ पर हम सभी का वर्णन नहीं कर सकते। हम सिर्फ वैज्ञानिक विकासवाद के अन्तर्गत जीवशास्त्री विकासवाद तक ही सीमित रखेंगे। अत: जीवशास्त्रीय विकासवाद की सामान्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं —

(i) - इसके अनुसार विश्व में वर्तमान जीवों का स्वरूप क्रमिक विकास का परिणाम है। आज जीवों का रूप जो हम देखते हैं, वह प्रारंभ में नहीं था। जीव परिवर्तनशील एवं विकासशील होते हैं।

(ii) - यहाँ जीवों में पारमार्थिक या चिरंतन भेद नहीं है। आरंभ में कुछ अत्यंत सूक्ष्म एवं सरल जीवकोशिकाएँ विद्यमान थीं, उन्हीं से विकसित होकर जटिल जीव बने। इस प्रकार नई-नई जातियाँ बनती हैं।

(iii) - जीवशास्त्रीय विकासवाद दो मुख्य कार्य करता है — ① विभिन्न जीवों के विकास की व्याख्या और ② विभिन्न जीव-योनियों के विकास की व्याख्या।

जीवशास्त्रीय विकासवाद का इतिहास :→ इसका इतिहास बहुत पुराना है। इसके समर्थक प्राचीन काल से आज तक पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। यूनानी विचारकों में Anaximander, Empedocles, आदि हैं। ये इस विकासवाद की वैज्ञानिक व्याख्या करने में असमर्थ रहे। इसका वैज्ञानिक विवेचन 18 वीं सदी से प्रारंभ होता है। वैज्ञानिक युग में सर्वप्रथम लिनियस, बुफन, डार्विन, आदि इसका समर्थन करते हैं। इसके बाद फ्रेंच विचारक लामार्क आते हैं। लामार्क के बाद चार्ल्स डार्विन ने इस विकासवाद को निरीक्षण और प्रयोगों की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा सुविकसित एवं परिपक्व बनाया।